॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

आत्मोपनिषत्

विषय सूची

॥अथ आत्मोपनिषत् ॥ 3
आत्मा उपनिषद् 4
शान्तिपाठ 14

॥ श्री हरि ॥

॥अथ आत्मोपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

गुरुके यहाँ अध्ययन करने वाले शिष्य अपने गुरु, सहपाठी तथा मानवमात्र का कल्याण-चिन्तन करते हुए देवताओं से प्रार्थना करते है कि:

हे देवगण ! हम भगवान का आराधन करते हुए कानों से कल्याणमय वचन सुनें। नेत्रों से कल्याण ही देखें। सुदृढः अंगों एवं शरीर से भगवान की स्तुति करते हुए हमलोग; जो आयु आराध्य देव परमात्मा के काम आ सके, उसका उपभोग करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ श्री हरि ॥

॥ आत्मोपनिषत् ॥

आत्मा उपनिषद्

ॐ अथाङ्गिरास्त्रिविधः पुरुषोऽजायतात्मान्तरात्मा परमात्मा चेति ।
त्वक्चर्ममांसरोमाङ्गुष्ठाङ्गुल्यः पृष्ठवंशनखगुल्फोदर-
नाभिमेढ्रकटूरुकपोलश्रोत्रभ्रूललाटबाहुपार्श्वशिरोऽक्षीणि भवन्ति
जायते म्रियत इत्येष आत्मा ।
अथान्तरात्मानाम पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशमिच्छाद्वेषसुखदुःख-
काममोहविकल्पानादिस्मृतिलिङ्गोदात्तानुदात्तह्रस्वदीर्घप्लुतः
खलितगर्जितस्फुटितमुदितनृत्तगीतवादित्रप्रलयविजृम्भितादिभिः
श्रोता घ्राता रसयिता नेता कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः
पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणीति श्रवणघ्राणाकर्षणकर्मविशेषणं
करोत्येषोऽन्तरात्मा । अथ परमात्मा नाम यथाक्षर उपासनीयः ।
स च प्राणायामप्रत्याहारधार्णाध्यान
समाधियोगानुमानात्मचिन्तकवटकणिका वा श्यामाकतण्डुलो वा
वालाग्रशतसहस्रविकल्पनाभिः स लभ्यते
नोपलभ्यते न जायते न म्रियते न शुष्यति न क्लिद्यते न दह्यते न
कम्पते न भिद्यते न च्छिद्यते निर्गुणः साक्षिभूतः शुद्धो निरवयवात्मा
केवलः सूक्ष्मो निर्ममो निरञ्जनो निर्विकारः
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धवर्जितो निर्विकल्पो
निराकाङ्क्षः सर्वव्यापी सोऽचिन्त्यो निर्वर्ण्यश्च पुनात्यशुद्धान्यपूतानि ।
निष्क्रियस्तस्य संसारो नास्ति । आत्मसंज्ञः शिवः शुद्ध एक एवाद्वयः
सदा । ब्रह्मरूपतया ब्रह्म केवलं प्रतिभासते ॥ १॥

अङ्गिरा (अंग, अंगी, अंग-ज्ञ आदि दृष्टि से) पुरुष त्रिविध 'आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा' रूप में प्रादुर्भूत हुआ। जो त्वक्, चर्म, मांस, रोम, अँगूठा, अँगुलियों , पीठ, नख, गुल्फ, उदर, नाभि, जननेन्द्रिय, कटि, जंघा, कपोल, भौंह, मस्तक, भुजाओं, पार्श्वभाग, सिर एवं आँखों आदि के माध्यम से जन्म-मरण के चक्र में घूमता है, वह आत्मा है। अन्तरात्मा (दृश्य पदार्थों में अव्यक्त रूप से स्थित अन्तर्यामी चेतन) वह है, जो पृथ्वी, जल, सुख-दुःख आदि (गुण), काम, मोह, तर्क-वितर्क आदि, स्मृति, लिंग, उदात्त, अनुदात्त, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदि (स्वर भेद), स्खलित, गर्जित (मेघ शब्द), स्फुटित, मुदित, नृत्य, गीत, वादित (आदि ध्वनि रूप), प्रलय, विजृम्भण (विकास) आदि के द्वारा श्रवण करने वाला, सुँघने वाला, रस लेने वाला, मनन करने वाला, जानने वाला, कार्य करने वाला, विज्ञानात्मा, पुराण, न्याय, मीमांसा आदि जो धर्मशास्त्रों का ज्ञाता, श्रवण, घ्राण, आकर्षण एवं कार्य विशेष को पूर्ण करता है। परमात्मा नाम से सम्बोधित अक्षर (अविनाशी या ॐकार रूप में) आराध्य है। वह (परमात्मा) प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, योग, अनुमान, आत्मचिन्तन आदि के द्वारा; वट कणिका (वट वृक्ष के सूक्ष्म बीज), श्यामाक-तण्डुल (सावाँ के सूक्ष्म चावल) तथा अत्यन्त सूक्ष्म बाल के अग्रभाग के सैकड़ों-हजारों हिस्सों से भी अति सूक्ष्म; इस प्रकार से चिन्तन किया जाता हुआ प्राप्त भी होता है और नहीं भी होता है। वह न कभी प्रकट होता है और न ही मरता है, न शुष्क होता है, न आर्द्र होता है, न चलायमान है, न कम्पन करता है, न टूटता है, न स्थिर रहता है, वह तो गुणों से रहित, सर्व प्रमाण भूत, शुद्ध स्वरूप, अवयवरहित आत्मा केवल, सूक्ष्म, निर्मल, निरंजन, विकारहीन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्धहीन, ज्ञान से रहित, कल्पना रहित, आकांक्षा से रहित, सर्वत्र व्याप्त, अचिन्त्य एवं इस प्रकार का परमात्मा है कि जिसका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं किया जा सकता। (वह) अशुद्ध-अपवित्र को शुद्ध-पवित्र करता है,

वह क्रियारहित है, उस परमात्मा का कोई संसार नहीं है अर्थात् संसार रहित है। 'आत्मा' नामक वह परमपवित्र, कल्याणकारी, एकमात्र, अद्वैत, ब्रह्मरूप होने के कारण केवल ब्रह्म ही प्रतिभासित होता है॥१॥

जगद्रूपतयाप्येतद्ब्रह्मैव प्रतिभासते ।
विद्याविद्यादिभेदेन भावाभावादिभेदतः ॥ २॥

इस जगत् के रूप में ब्रह्म ही परिलक्षित होता है। विद्या-अविद्या, भाव-अभाव आदि के भेद से जो भी दृष्टिगोचर होता है, वह अविनाशी ब्रह्म का ही रूप है॥२॥

गुरुशिष्यादिभेदेन ब्रह्मैव प्रतिभासते ।
ब्रह्मैव केवलं शुद्धं विद्यते तत्त्वदर्शने ॥ ३॥

गुरु एवं शिष्य आदि के भेद से ब्रह्म ही दृष्टिगोचर होता है। वास्तव में यदि देखा जाए, तो यत्र-तत्र-सर्वत्र वह शुद्ध प्रकाश स्वरूप ब्रह्म ही है॥३॥

न च विद्या न चाविद्या न जगच्च न चापरम् ।
सत्यत्वेन जगद्भानं संसारस्य प्रवर्तकम् ॥ ४॥

वस्तुतः न तो विद्या है और न ही अविद्या है, न जगत् है और न ही अन्य कोई वस्तु सत्य है; लेकिन सत्यरूप में जगत् का भान होना ही इस (संसार) का प्रवर्तक (इस प्रकृति का मूल कारण) है॥४॥

असत्यत्वेन भानं तु संसारस्य निवर्तकम् ।
घटोऽयमिति विज्ञातुं नियमः कोन्वपेक्षते ॥ ५॥

यह (संसार) असत्य है, यह भान होना ही इसका निवर्तक (मुक्तिदाता) है, जैसे सामने रखे हुए घट (घड़े) के ज्ञान के लिए कोई भी अन्य नियम (प्रमाण) अपेक्षित नहीं है (वह तो प्रत्यक्ष ही है)॥५॥

विना प्रमाणसुष्ठुत्वं यस्मिन्सति पदार्थधीः ।
अयमात्मा नित्यसिद्धः प्रमाणे सति भासते ॥ ६॥

जिस प्रकार से प्रत्येक सामने स्थित पदार्थ का ज्ञान बिना ही प्रमाण के हो जाता है, ठीक उसी प्रकार नित्य-सिद्ध यह आत्मा प्रमाणित (प्रत्यक्ष) होकर ही प्रतिभासित (प्रकाशित) होता है अर्थात् प्रत्येक वस्तु का ब्रह्ममय रूप होने के कारण ब्रह्म के प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं रहती है॥६॥

न देशं नापि कालं वा न शुद्धिं वाप्यपेक्षते ।
देवदत्तोऽहमित्येतद्विज्ञानं निरपेक्षकम् ॥ ७॥

जिस प्रकार देवदत्त आदि नाम के प्रति विज्ञानी (पुरुष) निरपेक्ष (पूर्ण आश्वस्त)हो जाता है, उसी प्रकार वह (आत्मतत्त्व) देश, काल अथवा किसी भी तरह की पवित्रता की अपेक्षा नहीं रखता॥७॥

तद्वद्ब्रह्मविदोऽप्यस्यब्रह्माहमिति वेदनम् ।
भानुनेव जगत्सर्वं भास्यते यस्य तेजसा ॥ ८॥

उसी प्रकार ब्रह्म को जानने वाले का ब्रह्माहम् (मैं ब्रह्म हूँ) ऐसा समझना ही ब्रह्म का साक्षात्कार (प्रत्यक्षानुभूति) है। जिस तरह सूर्य से सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है, उसी तरह ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उस ब्रह्म के तेज से प्रकाशित होता है॥८॥

अनात्मकमसत्तुच्छं किं नु तस्यावभासकम् ।
वेदशास्त्रपुराणानि भूतानि सकलान्यपि ॥ ९॥

उस ब्रह्म के प्रत्यक्ष सिद्धत्व में अन्य कोई साक्ष्य देना अनात्मक, असत् एवं तुच्छ है, उसका अवभासक (बोध कराने वाला) कौन है? (अर्थात् कोई नहीं।) वेद, शास्त्र, पुराण एवं समस्त भूत (प्राणि – जगत्) जिसके माध्यम से अर्थवान् हैं, वह (ब्रह्म) तो स्वयं प्रकाशित है॥९॥

येनार्थवन्ति तं किं नु विज्ञातारं प्रकाशयेत् ।
क्षुधां देहव्यथां त्यक्त्वा बालः क्रीडति वस्तुनि ॥ १०॥

तथैव विद्वान्रमते निर्ममो निरहं सुखी ।
कामान्निष्कामरूपी संचरत्येकचरो मुनिः ॥ ११॥

जिस प्रकार बालक भूख अथवा शरीर की किसी भी तरह की पीड़ा-परेशानी को त्याग कर (अर्थात् भूलकर) आकर्षक वस्तुओं (खिलौनों) के साथ क्रीड़ा करता रहता है, उसी प्रकार ही विद्वज्जन ममता-रहित, अहंकाररहित, सुखी रहते हुए ब्रह्म में ही रमण किया करता है। वह (आत्मज्ञानी) सभी तरह की इच्छाओं से मुक्त होकर मुनिरूप में एकान्तवासी होकर विचरण करता रहता है॥१०-११॥

स्वात्मनैव सदा तुष्टः स्वयं सर्वात्मना स्थितः ।
निर्धनोऽपि सदा तुष्टोऽप्यसहायो महाबलः ॥ १२॥

स्वयं अपनी ही आत्मा से सदा सन्तुष्ट तथा अपने को सर्वत्र स्थित मानता हुआ निर्धन भी सदैव सन्तुष्ट एवं असहाय भी अपने को महाबलवान् समझता है॥१२॥

नित्यतृप्तोऽप्यभुञ्जानोऽप्यसमः समदर्शनः ।
कुर्वन्नपि न कुर्वाणश्चाभोक्ता फलभोग्यपि ॥ १३॥

वह किसी भी तरह का भोजन न ग्रहण करता हुआ भी नित्य तृप्त रहता है, देखने में असमान व्यवहार करता हुआ भी सबको बराबर देखने वाला, कार्य करता हुआ भी काम न करता हुआ-सा तथा फल का उपभोग करता हुआ भी भोगरहित माना जाता है॥१३॥

शरीर्यप्यशरीर्येष परिच्छिन्नोऽपि सर्वगः ।
अशरीरं सदा सन्तमिदं ब्रह्मविदं क्वचित् ॥ १४॥

प्रियाप्रिये न स्पृशतस्तथैव च शुभा शुभे ।
तमसा ग्रस्तवद्भानादग्रस्तोऽपि रविर्जनैः ॥ १५॥

ग्रस्त इत्युच्यते भ्रान्त्या ह्यज्ञात्वा वस्तुलक्षणम् ।
तद्वद्देहादिबन्धेभ्यो विमुक्तं ब्रह्मवित्तमम् ॥ १६॥

पश्यन्ति देहिवन्मूढाः शरीराभासदर्शनात् ।
अहिनिर्ल्वयनीवायं मुक्तदेहस्तु तिष्ठति ॥ १७॥

वह आत्मा शरीर में रहते हुए भी अशरीरी है, वह परिच्छिन्न (शरीर में आबद्ध) रहता हुआ भी सर्वत्र गमनशील अर्थात् व्याप्त है। इसलिए शरीररहित उस ब्रह्मज्ञानी को कहीं पर भी प्रिय तथा अप्रिय ज्ञान स्पर्श नहीं करता (अर्थात् वह आत्मा किसी को प्रिय या अप्रिय नहीं समझता), शुभ एवं अशुभ उसे स्पर्श भी नहीं कर सकते। उसकी दृष्टि में सभी समान हैं। जिस प्रकार लोगों के द्वारा सूर्य राहु से ग्रसित न होने पर भी ग्रसित मान लिया जाता है, लोग भ्रान्तिवश उसे ग्रसित मानते हैं; क्योंकि उन्हें वस्तु-स्थिति का पता नहीं होता। उसी प्रकार शरीरादि के बन्धनों से मुक्त श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी को शरीरी के रूप में मानने वाले मूढ़ समझे जाते हैं; वास्तव में वह ब्रह्मज्ञानी (आत्मा) साँप की केंचुली के सदृश शरीर से सर्वथा मुक्त रहता है॥१४-१७॥

इतस्ततश्चाल्यमानो यत्किञ्चित्प्राणवायुना ।
स्रोतसा नीयते दारु यथा निम्नोन्नतस्थलम् ॥ १८॥

यह शरीर प्राण वायु के द्वारा ही इधर-उधर संचालित किया जाता है, जैसे झरने-नदी आदि के स्रोतों द्वारा लकड़ियों को ऊपर-नीचे ले जाया जाता है॥१८॥

दैवेन नीयते देहो यथा कालोपभुक्तिषु ।
लक्ष्यालक्ष्यगतिं त्यक्त्वा यस्तिष्ठेत्केवलात्मना ॥ १९॥

शिव एव स्वयं साक्षादयं ब्रह्मविदुत्तमः ।
जीवन्नेव सदा मुक्तः कृतार्थो ब्रह्मवित्तमः ॥ २०॥

जैसे दैव (भाग्य) के द्वारा देह कालोपभोग (सुख-दुःख आदि उपभोगों) में ले जाई जाती है, ऐसे जो केवल अपनी आत्मा के सहारे

लक्ष्य-अलक्ष्य की गति को त्यागकर स्थिर हो जाता है, वह (आत्मानुभूतियुक्त साधक) ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ साक्षात् भगवान् शिव ही है। शिवस्वरूप वह कृतार्थ ब्रह्मज्ञानी जीवित रहते हुए भी मुक्तावस्था को प्राप्त हो जाता है॥१९-२०॥

उपाधिनाशाद्ब्रह्मैव सद्ब्रह्माप्येति निर्द्वयम् ।
शैलूषो वेषसद्भावाभावयोश्च यथा पुमान् ॥ २१॥

यह (आत्मा), उपाधि (शरीरादि) के विनष्ट हो जाने पर ब्रह्मरूप होकर ब्रह्म में विलीन हो जाता है, जिस तरह विविध वेश को धारण करने पर व्यक्ति नट आदि के रूप में समझा जाता है तथा अपने वास्तविक रूप में आ जाने पर वही (पूर्व जैसा) व्यक्ति समझा जाता है॥२१॥

तथैव ब्रह्मविच्छ्रेष्ठः सदा ब्रह्मैव नापरः ।
घटे नष्टे यथा व्योम व्योमैव भवति स्वयम् ॥ २२॥

उसी तरह ही ब्रह्म को जानने वाला भी स्वयं ब्रह्म ही हो जाता है। केवल शरीरादि (वेश) के कारण वह भिन्न प्रतीत होता है। वस्तुत: वह ब्रह्म ही है, उससे भिन्न अन्य और कुछ भी नहीं है। जैसे घट के फूट जाने पर घट के अन्दर का आकाश-आकाश रूप ही हो जाता है॥२२॥

तथैवोपाधिविलये ब्रह्मैव ब्रह्मवित्स्वयम् ।
क्षीरं क्षीरे यथा क्षिप्तं तैलं तैले जलं जले ॥ २३॥

संयुक्तमेकतां याति तथात्मन्यात्मविन्मुनिः ।
एवं विदेहकैवल्यं सन्मात्रत्वमखण्डितम् ॥ २४॥

ब्रह्मभावं प्रपद्यैष यतिर्नावर्तते पुनः ।
सदात्मकत्वविज्ञानदग्धा विद्यादिवर्ष्मणः ॥ २५॥

वैसे ही उपाधि अर्थात् शरीरादि के विलय हो जाने के पश्चात् ब्रह्म को जानने वाला स्वयं ब्रह्म रूप ही हो जाता है। जिस तरह दुग्ध में दुग्ध, तेल में तेल और जल में जल मिला देने पर एक हो जाते हैं; ठीक उसी तरह आत्मज्ञानी मुनि एवं आत्मा की स्थिति भी एक ही है। इस प्रकार विदेह रूप कैवल्य-पद की प्राप्ति के पश्चात् सन्मात्र अखण्डित विग्रहवान् ब्रह्मभाव की प्राप्ति करके पुनः संसारावर्तन (आवागमन)से मुक्त हो जाता है; क्योंकि सदात्मकत्व विज्ञान से उसकी अविद्या दग्ध हो जाती है॥२३-२५॥

अमुष्य ब्रह्मभूतत्त्वाद्ब्रह्मणः कुत उद्भवः ।
मायाक्लृप्तौ बन्धमोक्षौ न स्तः स्वात्मनि वस्तुतः ॥ २६॥

ऐसे यति के ब्रह्मरूप हो जाने पर यह कैसे हो सकता है कि ब्रह्म का पुनः उद्भव हो। माया के द्वारा रचित बन्धन और मोक्ष वस्तुतः उस ब्रह्म में नहीं हुआ करते॥२६॥

यथा रज्जौ निष्क्रियायां सर्पाभासविनिर्गमौ ।
अवृतेः सदसत्त्वाभ्यां वक्तव्ये बन्धमोक्षणे ॥ २७॥

जिस प्रकार निष्क्रिय रस्सी में सर्प का बोध हो जाने पर यदि वह (सर्पाभास) पुनः समाप्त हो जाता है, तो फिर केवल-मात्र रस्सी ही आभासित होने लगती है। उसी प्रकार आवरण के सत् और असत् भाव को ही बन्धन और मोक्ष कहना चाहिए॥२७॥

नावृत्तिर्ब्रह्मणः क्वाचिदन्याभावादनावृतम् ।
अस्तीति प्रत्ययो यश्च यश्च नास्तीति वस्तुनि ॥ २८॥

बुद्धेरेव गुणावेतौ न तु नित्यस्य वस्तुनः ।
अतस्तौ मायया क्लृप्तौ बन्धमोक्षौ न चात्मनि ॥ २९॥

ब्रह्म का कोई भी आवरक नहीं होता। वह अन्य के अभाव के कारण अनावृत है। वस्तु के होने या न होने के विषय में जो कुछ भी विश्वास किया जाता है,ये तो वस्तुत: बुद्धि के ही गुण हैं,उस नित्य वस्तु (अविनाशी ब्रह्म) के नहीं। अतः माया के द्वारा प्रादुर्भूत होने वाले बन्धन और मोक्ष आत्मा में नहीं होते॥२८-२९॥

निष्कले निष्क्रिये शान्ते निरवद्ये निरंजने ।
अद्वितीये परे तत्त्वे व्योमवत्कल्पना कुतः ॥ ३०॥

उस कलारहित, निष्क्रिय, शान्त, निष्पाप, निरञ्जन, अद्वितीय परमात्म तत्त्व में आकाश के भेदों की भाँति (घटाकाश, महाकाश आदि) कल्पना कहाँ से हो सकती है?॥३०॥

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ ३१॥

सत्य तो यह है कि वह परब्रह्म न तो जन्म लेता है और न ही जन्मरहित है,न वह बन्धन में रहता है, न ही साधक है, न ही वह मोक्ष की इच्छा वाला है और न ही वह मुक्त है (वह इन सबसे परे है।)॥३१॥

॥ हरि ॐ ॥

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

गुरुके यहाँ अध्ययन करने वाले शिष्य अपने गुरु, सहपाठी तथा मानवमात्र का कल्याण-चिन्तन करते हुए देवताओं से प्रार्थना करते है कि:

हे देवगण ! हम भगवान का आराधन करते हुए कानों से कल्याणमय वचन सुनें। नेत्रों से कल्याण ही देखें। सुदृढः अंगों एवं शरीर से भगवान की स्तुति करते हुए हमलोग; जो आयु आराध्य देव परमात्मा के काम आ सके, उसका उपभोग करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ इति आत्मोपनिषत् ॥

॥ आत्मा उपनिषद् समात ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥